अध्याय पैंतीसवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"मेरे मनमंदिर में निवास करने वाले हे सतगुरु सिद्धारूढ़जी, मैं आप की चरणधूल को भावभक्ति से प्रणाम करता हूँ, कृपा करके मेरी बिनती सुनिए। सज्जनों के मन में क्रीडा करने वाले गुरुनाथजी, मैं आप की महिमा बयान करना चाहता हूँ। आप का गुणवर्णन करने के लिए इस दास को प्रेरणा दीजिए।" ॐ नमः सतगुरुसिद्धनाथजी, आप के चरणों में मैं हमेशा विनत रहूँ; जिन चरणों के लाभ से ब्रह्म की उपाधि का भी निवारण होगा। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश इन त्रिमूर्तियों को भी उपाधि हो सकती है, परंतु आप निश्चित ही उपाधिरहित हैं; आप का भजन करने से उपाधियों का विनाश होकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। आप की कृपा से देहबुद्धि होने वाला मनुष्य आत्मबुद्धि प्राप्त करके विदेही बनता है और संपूर्ण ब्रह्मांड तथा ब्रह्मांड में स्थित आप ही के विविध रूप, स्वयं में देखता है। जब तक आप के चरणों की प्राप्ति नहीं होती तब तक प्रत्येक मनुष्य को उसकी पत्नी, पुत्र ही उसके अपने हैं ऐसा लगता रहता है, परंतु भावभक्ति से आप की शरण में जाने के पश्चात उस मनुष्य का मन विषयोपभोगों से (इस सांसारिक वस्तुओं से) विरक्त हो जाता है। उसपर वह मनुष्य समझ जाता है की, जिन्हें वह अपना समझता था, वे सारे आप ही के रूप हैं ऐसी प्रतीति उसको होती है। उसके पश्चात वह अहंकार तथा ममत्व का बोझ स्वयं नहीं उठाता; वह बोझ आप के बिना अन्य कौन ढोएगा? सुख देने वाली विषयोपभोगों की जिन वस्तुओं का उस मनुष्य को आकर्षण रहता है, वह आकर्षण तथा ममत्व, आप की कृपा से नष्ट होने के पश्चात, वे सारी वस्तुएँ तथा ब्रह्म एकरूप ही है ऐसी प्रतीति उसे होती है। इस प्रकार, प्रति क्षण व्यवस्थित रूप से और क्रमशः, आप की कृपा से वह मनुष्य ज्ञान की सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है; जैसे जैसे ज्ञान का संचय होता है, वैसे वैसे माया का फैलाव हलके हलके नष्ट होने लगता है। श्रोतागण, अब गुरुनाथजी की जीवनी सुनिए, जिससे आप के कान पावन होंगे तथा दोषों का निवारण होकर मन विकाररहित हो जाएगा।

प्रतिदिन सिद्धाश्रम में रहकर भक्तों का उद्धार करने वाले श्रीसिद्धारूढ़जी की शरण में म्हैसूर (पूर्वकाल में महिशूर) से एक भक्त आया। सतगुरुजी ने उसके

चेहरे की ओर देखा और मन ही मन सोचा की यह भक्त तो भोला है, इसलिए उन्होंने उसका नाम "भोला भक्त" रख दिया और उसे कहा, "तुम 'भोले भक्त' हो|" उस भक्त ने कहा, "हे दयालु स्वामीजी, आप की महिमा सुनकर मैं आप की शरण में आया हूँ, कृपा करके मुझ जैसे दीन मनुष्य को पार लगाईए।" सतगुरुजी ने उसे स्वीकार किया और कहा, "तुम प्रतिदिन यहाँ प्रवचन सुनने के लिए आ जाया करो। यहाँ आकर तुम सेवा अर्पण करो, जिससे तुम्हारा भला होगा।" गाँव में एक घर किराये पर लेकर उसने अपना परिवार स्थापित किया; उसके पश्चात प्रतिदिन सिद्धाश्रम आकर वह वेदांत पर प्रवचन सुनने लगा। उसके पास थोड़ा बहुत धन था, इसलिए वेदांत पर प्रवचन सुनते समय उसका मन चंचल होकर घर की तरफ रहने लगा। रात को सोते समय भी उसे चिंता होती थी की अगर दीवार तोड़कर चोर सारा धन उठाकर ले जाए तो परिवार कैसे चलाए? चोरों के भय से उसे रातों को नींद नहीं आती थी, इसलिए प्रवचन सुनते समय उसे बहुत नींद आती थी, नींद खुल जाने पर भी उसका मन तुरंत घर की ओर लग जाता। सतगुरुजी बारीकी से उसकी स्थिति का निरीक्षण कर रहे थे और मन ही मन कह रहे थे की लगता है की इसे बहुत चिंता हो गयी है; हालाँकि, इसमें मोक्षप्राप्ति के लिए आवश्यक सभी लक्षण हैं, फिर भी धन यह उसके मोक्षमार्ग की सब से बड़ी बाधा ही है|

इसी प्रकार चिंता करते रहने से एक रात वह भोला भक्त बहुत देर तक सोया ही नहीं और तड़के उसे नींद आ गयी। इतने में दरवाजा तोड़कर चोर घर के भीतर घुस गए। चोरों ने उसे खंभे से बाँध दिया तथा उसके मुँह में कपड़े का एक गोला ठूंस दिया और घर में होने वाला सारा धन चुराकर ले गये; उस समय उसकी रक्षा करने वहाँ कोई भी नहीं था। धन के मोह से उसका मन पूर्ण रूप से व्याप्त होने के कारण, सतगुरुजी का स्मरण करना तक भी उसे याद नहीं आया, चोर कपड़े तक उठा ले जाने के कारण केवल एक लँगोटा घर में बचा था। सारे चोर घर से निकल जाने के पश्चात पड़ोसी अंदर आ गए और लँगोटा धारण किए भोले भक्त को खंभे से बंधा हुआ देखकर दया करके उन्होंने उसे मुक्त किया। उसके पश्चात वह सीधा सतगुरुजी के पास चला गया और उनके चरणों में गिरकर बिलख बिलखकर रोया; उसे देखकर सतगुरुजी ने कहा,

"यह दुख तुम्हारे लिए कल्याणकारक ही सिद्ध होगा। ध्यान में रहे, सभी का दाता एक ईश्वर ही है। अरे पगले, इस मृत्युलोक में रहने वाले सभी लोगों के पास होने वाले मोक्ष रूपी धन की प्रति दिन षड्रिपु चोरी कर ही रहे है, क्या जीवात्मा के लिए उस धन (मोक्ष) से अन्य कोई धन (पृथ्वी पर होने वाली संपत्ति) अधिक श्रेष्ठ है? नहीं न? ऐसा अमूल्य धन नष्ट होने के बावजूद भी लोग चिंता नहीं करते, तो इस क्षणिक धन के जाने से तुम कतई दुखी मत होना। इसके पश्चात तुम्हें अपार शाश्वत धन प्राप्त होगा।" ऐसा कहकर सतगुरुजी ने स्वयं ओढा हुआ वस्त्र उसे दे दिया। भोले भक्त ने कहा, "महाराज, अब मैं कहाँ जाऊँ? अब मैं आप ही के चरणों में पड़ा रहूँगा। भिक्षा माँगकर अपना पेट भरुँगा, परंतु मेरा मन आप के चरणों पर स्थिर करुँगा।" उसकी बात सुनकर सतगुरुजी ने आनंदित होकर उसे गले लगाया और कहा, "तुम्हें दिया हुआ 'भोला भक्त' यह नाम तुमने आज सार्थ किया। अब यह नाम तुम्हें सचमुच ही शोभा देता है, अब तुम इस मठ में चैन से रहना।" चोर सारा धन ले जाने के कारण धन की सारी चिंता दूर हो गयी, इसलिए स्वाभाविक ही उसे रात को अच्छी नींद आयी तथा वेदांत पर प्रवचन सुनते समय उसे नींद नहीं आयी। मन एकाग्र करके वेदांत पर प्रवचन सुनने से उसकी सारी वासनाएँ नष्ट हो गयी और मन में वैराग्य की ज्वाला भड़क उठने के कारण गुरुसेवा में उसका मन लीन हो गया।

एकबार सिद्धजी को जूड़ीज्वर होने के कारण वे बिछाने पर लेटे हुए थे; बिलकुल उसी समय शिवरात्री का समारोह समीप आया था। सतगुरुजी समझ गए की सभी भक्त चिंताग्रस्त हुए हैं; उन्हें लगा की समारोह के लिए पधारे हुए सभी लोग निराश होकर लौट जाएँगे। उसपर उन्होंने कुछ करीबी भक्तों को बुलाया और कहा, "क्या, आप में से कोई मेरा जूड़ीज्वर स्वीकार करेगा?" उनकी बात सुनकर किसी ने कहा की उसके बीमार पड़ने से उसकी पत्नी तथा बच्चे भयभीत हो जाएँगे, तो किसी ने कहा की उसे कोई जरूरी काम है। अन्य किसी ने कहा की उसकी पत्नी गर्भवती है, तो किसी ने कहा की अभी उसकी शादी तक नहीं हुई है। किसी ने कहा की उसकी पत्नी अभी जवान है, अगर जूड़ीज्वर से वह मर जाए, तो उसकी पत्नी क्या करेगी? धीरे धीरे एक एक करके सभी

भक्त वहाँ से चले गये। जो बचे हुए भक्त थे वे सारे संन्यासी थे, उनसे भी सिद्धजी ने वही प्रश्न पूछा तब किसी ने कहा की उसके भक्त उसे बुलाने आए हैं, किसी ने कहा की अभी तक उसकी शास्त्रों की पढ़ाई पूरी नहीं हुई और बहुत कुछ बाकी है। उनमें से एक ने कहा की दूसरे दिन तड़के ही वह तीर्थयात्रा पर निकल रहा है। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के निमित्त बताकर सभी शिष्यों ने सतगुरुजी का जूड़ीज्वर स्वीकारने से मना कर देने के पश्चात सिद्धजी ने भोले भक्त से पूछा, "अरे भाई, क्या तुम मेरा जूड़ीज्वर स्वीकार करोगे?"

भोले भक्त ने कहा, "आप का ज्वर स्वीकार करना मेरे लिए महाप्रसाद का लाभ ही है, ऐसा मैं समझता हूँ। आप अपना जूड़ीज्वर मुझे अवश्य दीजिए, परंतु ऐसा कुछ कीजिए की अगर मेरी मृत्यु हुई तो कोई भी आप को मेरी मृत्यु के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराएगा। आप के पावन सन्निधान में अगर मेरी मृत्यु हुई तो मैं अपने आप को धन्य समझूँगा; क्योंकि आप की सेवा करके मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ, इसलिए यह जूड़ीज्वर स्वीकारने की सेवा मुझे अवश्य दीजिए।" भोले भक्त के ये शब्द सुनकर सतगुरुजी मन ही मन बहुत आनंदित हुए और उसे हाथ से स्पर्श करके बोले, "ले लो, अब मेरा जूड़ीज्वर मैं तुम्हे दे रहा हूँ!" उसी क्षण भोले भक्त को ज्वर चढ़ गया और सतगुरुमहाराजजी तंदुरुस्त हो गये; सभी भक्तों को आनंद हुआ। समारोह यथाविधि संपन्न हुआ। सतगुरुजी को पल पल भोले भक्त के निस्सीम भक्ति का स्मरण हो रहा था, इसलिए वे बार बार उसे देखकर आते तथा भयभीत न होने की सलाह देते। समारोह संपन्न होने के पश्चात तत्काल सतगुरुजी उसके पास आए और बोले, "अरे भाई! फिर से मैं तुम्हारा जूड़ीज्वर स्वीकार करता हूँ।" तब उस भोले भक्त ने कहा, "अब अगर आप ने मेरा ज्वर फिर से स्वीकार किया तो अनेक भक्त दुखी हो जाएँगे।" सिद्धजी ने कहा, "अरे! तुम्हे रोगी हुआ देखकर मुझे अति दुख हो रहा है।" उसपर भोले भक्त ने कहा, "यह जूड़ीज्वर मेरे शरीर में ही रहने दीजिए, इसे मैं दूसरे किसी को भी देने वाला नहीं हूँ। आप का स्वास्थ्य ठीक है यह देखकर मुझे अति आनंद हो रहा है।" भोले भक्त के ये शब्द सुनकर सभी ने कहा, "धन्य धन्य! मनुष्य के इस शरीर पर होने वाली ममता (यह शरीर मेरा है ऐसा झूठा अहंकार) का त्याग करके, तुम पूर्ण रूप से सतगुरुजी के कृपापात्र हो

गये हो।" सतगुरुजी अति हर्षित हुए; करुणा से उन्होंने फिर एक बार भोले भक्त को स्पर्श करके पूर्ण रूप से निरोगी कर दिया; उसी पल उठकर वह रोते हुए कहने लगा, "महाराज, क्यों आप ने मुझे तंदुरुस्त किया? अब अगर आप जूड़ीज्वर से फिर से बीमार पड़ेंगे तो दुख से मैं अपने प्राण दे दूँगा।" तब सतगुरुजी ने कहा, "अरे भाई! जूड़ीज्वर का जो मेरा भोग (प्रारब्ध) था, अब वह पूरा हो चुका है, इसलिए मुझे फिर से ज्वर नहीं आयेगा, तुम निश्चिन्त रहो।" एक दिन रात होकर एक घंटा होने के पश्चात सिद्धजी ने भोले भक्त को बुलाया और कहा, "मैं अब बाहर जा रहा हूँ, तुम मेरे साथ चलो।" गुरुजी की आज्ञा का पालन करते हुए वह तत्काल सिद्धजी के पीछे पीछे चलने लगा। दोनो भी घने अँधेरे से जा रहे थे। सतगुरुजी पर ध्यान केंद्रिभूत करके भोला भक्त उनके पीछे पीछे जा रहा था। अगले पल उसने देखा तो उसे गुरुजी एक कुँए में गिरे हुए दिखाई पड़े। भयभीत होने के कारण वह अचानक हड़बड़ाया। आगे पीछे कुछ सोचे बगैर उसने तत्का कुँए में छलांग मारी। अँधेरे में ठोकरें खाने से उसका पूरा शरीर जखमी होकर वह उसी स्थिति में पड़ा रहा।

परंतु ऐसी स्थिति में भी धीरज न खोते हुए उसने कराहते हुए सतगुरुजी का स्मरण (नाम लेना) जारी रखा। एक पल भर में, उसकी आँखों के सामने कड़कती हुई बिजलि के समान दिव्य प्रभा फैल गयी। उस दिव्य प्रभा में उसे सतगुरुजी दिखाई पड़े, तत्काल वह उठकर बैठा और भागकर उसने सतगुरुजी को गले लगाया। एक ही क्षण में जीवशिव एकरुप हो गये और अवर्णनीय आनंद सागर में वह डूब गया। उसका देहभान नष्ट हुआ। गुरु-शिष्य यह भेद नष्ट होकर वह गुरुस्वरूप में लीन हो गया। इस स्थिति में पाँच घटिका समय बीतने के पश्चात भोले भक्त ने कुँए में ही होते हुए सामने गुरुजी को देखा। उसी क्षण वह एकरुपता की भावना खंडित हो गयी और गुरुजी उससे भिन्न हैं ऐसा उसे दिखाई पड़ा, परंतु कुछ समय पूर्व प्राप्त हुई अनुभूति न भूलने के कारण वह अखंड आनंद में ही रहा। धीर धीरे वह प्रभा नष्ट हो गई, उसके साथ साथ सतगुरुजी भी अंतर्धान हो गए, परंतु जो आनंद प्राप्त हुआ था वह अभंग ही रहा। भोला भक्त किसी उन्मत्त के समान दिख रहा था। आनंद सागर में चार घटिका डूबा रहने के पश्चात उसे अपने शरीर का होश आया और शरीर पर हुए

जखमों की वेदना की प्रतीति होने लगी। इतने में उसने कुँए के किनारे से एक आवाज सुनी और झट् से वह आवाज सतगुरुजी की ही है, इसका उसे विश्वास हुआ। उसी क्षण उसे फिर से उसी आनंद का स्मरण होकर उसके जखमों की वेदना का पूर्ण रूप से विस्मरण हुआ। सतगुरुजी ने कहा, "वाह रे मेरे भोले भक्त! तुम कहाँ हो? मुझे दिखाई नहीं पड़ रहे हो।" तब भोले भक्त ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं कुँए में हूँ।" उस समय एक अचंभा हुआ। सिद्धजी ने उनके हाथ परिमाण से अधिक लंबे बढ़ाए; कुँए के किनारे खड़े हुए सिद्धनाथजी के दोनो हाथ कुँए के तह तक पहुँच गए। दोनों हाथों से उन्होंने भोले भक्त को पकड़कर ऊपर खींच लिया। ऊपर आते ही सतगुरुजी ने उसकी ओर देखा और एक पल में उसे गले लगाया, उसी क्षण उसके शरीर के सारे जखम भरकर वह पूर्ण रूप से ठीक हो गया। सतगुरुजी ने कृपा करके उसे समाधि का सुख प्राप्त कराया; उसे ब्रह्मज्ञानी बनाया, ऐसी सतगुरुजी की बड़ी अजीब करनी है। वेदशास्त्रों का पठण किये बगैर, केवल मन में शुद्ध भाव स्थापित करके तथा सतगुरुजी साधारण शरीरी हैं ऐसा न समझकर वे ईश्वरी अवतार हैं ऐसा समझकर उनकी भक्ति करने से ब्रह्मप्राप्ति होती है। ऐसी है यह भोले भक्त की कहानी, जिसे सुनते ही सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और सुनने वाला मनुष्य सतगुरुजी का मनभावता हो जाता है।

अब इस कहानी का लक्ष्यार्थ सुनिए। भोले भक्त को मूर्तिमान सद्भाव समझें। उसके पास जो धन था उसे विषयासक्ति समझें। मन की निर्लिप्तता रूपी चोर आकर वह धन ले गये, जिससे वैराग्य रूपी अग्नि की ज्वालाएँ भड़क उठी और उनमें शरीराभिमान की घास पूरी तरह से जल गयी। उससे वह शरीर के प्रति उदास या निर्लिप्त हुआ, उसपर उसने प्रेम पूर्वक जूड़ीज्वर स्वीकार किया। दयालु सतगुरुनाथजी ने तब भक्त की परीक्षा ली और वह परीक्षा में उत्तीर्ण होने के कारण ज्ञान देने के लिए उन्होंने उसे एकांत में बुलाया। समाधि रूप कुँए में गिरे हुए सतगुरुजी को देखकर, देहबुद्धि का त्याग करके भक्त ने कुँए में छलांग मारी तब उसके अवयव जखमी हुए। वहाँ उसने स्वरूप की दिव्य प्रभा देखी। आत्मज्ञान की उस प्रभा में उसे सतगुरुजी का रूप दिखाई पड़ा और उसी में वह एकरुप हो गया। उस समय उसे समाधि के सुख

की पूर्ण अनुभूति हुई। सतगुरुजी ने उसे फिर से समाधि से जगाकर बाह्य जगत में लाया, फिर भी उसे मिली हुई आनंद की अनुभूति बनी रही; क्योंकि वह ब्रह्मज्ञानी होने के कारण हमेशा समाधि की अनुभूति कर रहा था। स्वयं के शरीर पर होने वाली ममता पूर्ण रूप से त्याग देने के पश्चात ही भक्त सतगुरुजी में एकरुप हो सकता है और यही मुक्ति है, अन्य कुछ भी नहीं है। संत तुकाराम महाराजजी कहते हैं की जिसे तत्काल मोक्ष चाहिए, उसे सारा अभिमान पूर्ण रूप से त्यागना चाहिए, उनके दोहे की सच्चाई इस उदाहरण को देखकर जँचती है। सभी वेदों का मूर्तिमान निष्कर्श होने वाले सतगुरुनाथजी का बयान करने में मेरी बुद्धि अधूरी पड़ रही है, परंतु यह ग्रंथ वे स्वयं मुझ से लिखवा रहे हैं। अगले अध्याय में बयान की हुई सुरस कथा प्रेम पूर्वक सुनने से, सुननेवालों के सभी दोष नष्ट हो जाएँगे और उनकी देहबुद्धि नष्ट होकर वे गुरुजी के कृपापात्र हो जाएँगे। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह पैंतीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥